राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 71 जनवरी-दिसम्बर 2023

रामाश्रम सत्संग (रजि.), ग़ाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	कबीर साहब	1
2.	कुछ नहीं जाना	4
3.	यम नियम का पालन आवश्यक है	8
4.	मौन साधना का स्वरुप	10
5.	भजन	14
6.	गुरु ग्रंथ साहिब (पृष्ठ 1352)	15
7.	श्रीरामचरितमानस - उत्तरकाण्ड (42 - 46)	18
8.	कार्यकारी समिति	23
9.	योग साधना एवं भोजन	25
10.	भक्ति का अर्थ	30
11.	The Collected Works of Sh. Sri Ramana Maharshi	30
12.	Tales and Parables of Sri Ramakrishna	31
13.	The Mastery of Diet–Acharya Vinoba Bhave	33
14.	Sri Aurobindo's Thoughts and Glimpses	35

राम संदेश

वर्ष 71 जनवरी-दिसम्बर 2023

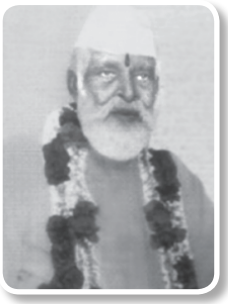

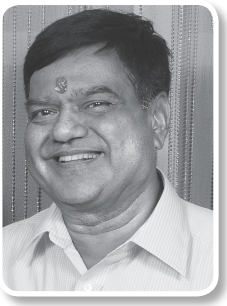

संस्थापक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी
सम्पादक : श्री उमा कान्त प्रसाद (आचार्य एवं अध्यक्ष)

कबीर साहब

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हैं कोय।
जिन सहजै विषया तजै, सहज कहावै सोय।।

सुमिरन तू घट में करै, घट में ही करतार।
घट भीतर ही पाइये, सुरति शब्द भण्डार।।

सुमिरन सुरत लगाय कर, मुख से कछू न बोल।
बाहर का पट बन्द कर, अन्दर का पट खोल।।

करनी बिन कथनी कहै, अज्ञानी दिन रात।
कुकुर सम भूकत फिरै, सुनी सुनाई बात।।

जीवन जोवत राज मद, अविचल रहै न कोय।
जु दिन जाय सत्संग में, जीवन का फल सोय।।

तन सराय मन पाहरु, मनसा उतरी आय।
को काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय।।

कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै राम।
जा मुख राम न नीकसै, ता मुख है किस काम।।

तन को जोगी सब करें, मन को बिरला कोई।
सब सिद्धि सहजे पाइए, जे मन जोगी होइ।।

राम नाम सुमिरन करै, सतगुरु पद निज ध्यान।
आतम पूजा जीव दया, लहै सो मुद्रि अमान।।

मैं–मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भाजि।
कब लग राखौ हे सखी, रूई लपेटी आगि।।

दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारंबार।
तरुवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागे डार।।

माया तजी तौ क्या भया, मानि तजी नहीं जाइ।
मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि को खाइ।।

कबीर तन पंछी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ।
जो जैसी संगती कर, सो तैसा ही फल पाइ।।

चिऊंटी चावल ले चली, बिच में मिलि गई दाल।
कहैं कबीर दो ना मिलै, इक ले दूजी डाल।।

तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ मांहिं मन मिलि रहा, अब कहुं अनत न जाय।।

कबीर केवल राम की, तू जिनि छाँड़े ओट।
घण–अहरनि बिचि लौह ज्यूं, घणी सहै सिर चोट।।

राम नाम निज औषधि, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ रहै, ताकी बेदन जाय।।

कबीर पानी हौज का, देखत गया बिलाय।
ऐसे ही जीव जायगा, काल जु पहुंचा आय।।

परारब्ध पहिले बना, पीछे बना शरीर।
कबीर अचम्भा है यही, मन नहिं बांधे धीर।।

झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत।
राम नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत।।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाहिं।।

कस्तूरी कुन्डल बसे, मृग ढूढे बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनियां देखे नाहिं।।

पांच पहर धन्धो गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर भी नाम बिन, मुक्ती कैसे होय।।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
कबीर संगत साधु की, कटै कोटि अपराध।।

आरत है गुरु भक्ति करूं, सब कारज सिध होय।
करम जाल भौजाल में, भक्त फंसै नहिं कोय।।

साध संगति हरिभजन बिन, कछू न आवै हाथ।।
मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।।

झूठे सुख को सुख कहे, मानत है मन मोद।
खलक चबैना काल का, कुछ मुँह में कुछ गोद।।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम-रस, पुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्रजी महाराज

कुछ नहीं जाना

महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने एक जगह लिखा है– ''हे परमपिता परमात्मा यह सेवक जैसा है तैसा आपकी शरण में मौजूद है। इसको खबर नहीं कि आपके गुण कैसे गाये जावें। कभी–कभी अपनी बाखबरी पर नाज (सचेत दशा पर गर्व) हो जाता है, लेकिन जब काम का वक्त आता है तो यह सब धरे का धरा रह जाता है। अब तक छान–बीन करने का नतीजा यह निकला और यह जान पाया कि ''कुछ नहीं जाना।''

दुनिया के हर हिस्से में इल्म (विद्या) का शोर मचा हुआ है। लाखों करोड़ों किताबें लाईब्रेरियों में भरी पड़ी हैं। हजारों अखबार और रिसाले हर मुल्क के कोनों से रोजाना हफ्तेवार और माहवारी निकल रहे हैं। हर खास और आम की नजरों में समाकर, जबानों पर चढ़कर, जहनों (मस्तिष्क) में उतर जाते हैं और कुछ रोज हाफिजे (स्मरण) की कोठरियों में बन्द रहकर फिर न जाने कहाँ से कहाँ चले जाते हैं, कि याद करने पर भी याद नहीं आते और अगर याद भी आ जायें तो बे सिर–पैर के, किसी काम के नहीं। कहाँ से आते हैं और कहाँ गायब हो जाते हैं ? क्या यह सब आपके नाम और रूप की गूँजें और नजारे तो नहीं हैं जो आपके ज्ञान के लहरों की शक्ल में उठते और फिर लुप्त हो जाते हैं ?

ज्ञान–अज्ञान, प्रकाश–अंधकार, विद्या–अविद्या, जड़–चैतन्य, मौत–जिन्दगी, ताकत–कमजोरी, वगैरा–वगैरा यह सबके सब आपकी माया के खेल और तमाशे हैं। दुनियाँ एक तमाशे की जगह रंगमंच है। सब लोग ऐक्टर यानि अभिनेता और आपस में एक दूसरे का खेल देखने वाले हैं। कुछ लोग खेल खेल रहे हैं, तो कुछ उन खेलों को देख रहे हैं और कुछ इन खेले हुए खेलों की नकल उतारने में बदमस्त (संलग्न) हैं। बहुत सी तादाद (संख्या) लोगों के इन नकली खेलों को देखकर ऐसी मस्त और महब (तल्लीन) है कि उनके आनंद का ठिकाना नहीं। यह चक्र ऐसा घूम रहा है कि न मालूम कब खत्म होगा ? मुमकिन है कि महाप्रलय या कयामते कुब्रा इस चक्र की आखिरी हरकत या ठहराव के दिन का नाम हो ।

जो इस संसार से चले गये, सब मुक्त हस्तियाँ अपना-अपना खेल दिखला कर और थक-थका कर एक कोने में बैठे हैं और ऐसे खामोश और छुप कर बैठे कि लौट कर खबर तक न ली, ऐसे गुमनाम हुए कि नामोनिशान तक बाकी नहीं। क्या हुआ अगर उँगलियों पर गिने-गिनाये महापुरुष, ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बर, अवतार-औलिया, अपने अपने कारनामों या हिदायतों (कृतियों-उपदेशों) के नाम और रूप में अब तक याद करने वालों को अपनी झलक दिखा देते हैं। उनका साया रूपी नाम और रूप जब तक कि ईश्वरीय प्रकाश बाकी है, कायम रहेगा। पर साया तो साया ही है। नकल की हैसियत और उम्र भला कितनी?

ऐ परमात्मा ! ये बन्दा भी ऐसी हस्तियों की कितनी नकलों की नकल और असलियत के किसी मुकाम की असल का साया और परमात्मा की सिफात का मजमुआ (गुणों का समूह) आपके मुकर्रर किये हुए नियमों के अनुसार पार्ट अदा कर रहा है। आप सबके हृदय की जानने वाले हैं। इसलिये आप पर ही छोड़ता हूँ कि आप खुद फैसला कर लें कि सेवक का खेल कितना असली है और कितना नकली, और नकली है तो हस्ती की किस असल की नकल। मुझको पक्का विश्वास है कि आपकी दया और कृपा की लहरों व मौजों ने आपसे दूर पड़े हुए शरीर को चारों तरफ से इस दुनियाँ में पहले ही दिन से ढाँप रखा था और सबसे पहले हिदायत (आदेश) की रोशनी मुझ पर मेरी परमभक्त माता की पवित्र गोद में डाली गई, जिस प्रकाश की हरारत (गरमी) ने सात वर्ष तक पाला पोसा।

हे परम दयालु ! आपके रहम (दया) ने मुझको बहुत दिनों तक बेहिदायत नहीं छोड़ा बल्कि उम्र के उन्नीसवें साल में एक मुबारिक दिन ऐसा हुआ कि तमाम हस्ती को हमेशा के लिए एक मुजस्सिम रहीम (मूर्तिमान दयालु) पंथ के दिखलाने वाले, ज्ञान और विज्ञान के दीपक के सुपुर्द कर दिया। इस सच्चे रास्ते को दिखलाने वाले ने पहले ही दिन मेरे कान में फूँक दिया कि तेरी हस्ती पहले ही दिन से असलियत की तरफ मायल (झुकी हुई) है। इसलिये तू अपने आपको यानी असल को असल करके दिखा। नकल तो असल की कर और नकल की नकल इस तरह कर कि नकल या साये को औजार (हथियार) बना स्वांग रचने में माया की मदद ले और सहारा जाते मुतलक (सर्वेश्वर) का ले।

मेरे रहनुमा (पथप्रदर्शक) ने ऐसा इशारा देकर मुझको सिर्फ मेरे ऊपर ही छोड़ दिया, बल्कि खुद साये (छाया) की तरह हर वक्त साथ रहकर, सोलह बरस तक अपनी खास तवज्जह जाहिरी और अन्दरूनी से मेरी निगाहेदाश्त फरमाई (अर्थात प्रकट व अप्रत्यक्ष विशेष कृपा से चौकसी की)। पंथ के बाहरी आडम्बरों से अलहदा रहने के लिए हमेशा हिदायत फरमाई और आखिरकार अपने रंग में रंग–रंगाकर यह हुक्म फरमाया कि हमारा मिशन जिस तरह और जहाँ तक हो सके दुनियाँ के लोगों को पहुँचाया जाये।

आपकी मन्शा यह थी कि गिरे हुए जीवों और भूले भटके संसारियों को उभारा जाये और उनकी हालत को संभाला जाये। आपका फरमान यह था कि जब तक लोगों की अन्दरूनी (आन्तरिक) हालत न सम्भलेगी, उनकी भीतरी शक्तियों का उभार होकर वे जाग न जायेंगी और मन की ताकतें फिर से नश्वोनुमा (विकसित) न होंगी और न फूलें फलेंगी, बुद्धि तेज होकर शुद्ध न होगी और सच्चा ज्ञान प्राप्त न होगा, उस वक्त तक खाली पूजा–पाठ और ऊपरी उपासना से काम न चलेगा और जीव जैसे इस हाल में बँधे हुए हैं वैसे ही फँसे रहेंगे।

इसलिये आपने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि जहाँ तक बन सके अन्दर का अभ्यास किया और कराया जाये और इसके साथ सब धर्म संबंधी उसूलों (नियमों) की पाबंदी भी की जाये। यम–नियम, जायज और नाजायज तरीकों और अमलों, धर्म–अधर्म के व्यवहारों पर पूरा ख्याल रखा जाये जिससे इखलाक (चरित्र) सुधरे। स्वाध्याय से भी मौका–ब–मौका फायदा उठाया जाये। अन्तर का अभ्यास करने वालों का सत्संग किया जाए, तभी जाहिरी और अन्दरूनी (आंतरिक) तरक्की मुमकिन है।

इसके खिलाफ (विपरीत) अगर दुनियाँ के उन पन्थाइयों की रीस (नकल) उतारी जायेगी और अमल करेंगे जो महज तितली बनकर किताबें पढ़ लेते है या बुजुर्गों, महापुरुषों का हाल सुनकर अपने दिल का इत्मीनान हासिल कर लेते हैं और अन्दरूनी (आन्तरिक) अभ्यास कुछ नहीं करते, उनका अभ्यास सिर्फ थोड़ी देर किताबों का पाठ करना और भजन कीर्तन करके शब्दों को गाकर, अपनी तबियत को बहलाना है, तो फिर जिसका काम असली मकसद (ध्येय) तक पहुँचाना है, कोसों दूर हो जायेगा ।

आपके हुक्म और उसूलों की पाबन्दी का हमेशा ख्याल रखा गया और यही वजह है कि हमारे प्रेमियों की तादाद बहुत थोड़ी है। दुनियाँ के लोग चाटक नाटक, ऊपरी खेल-तमाशों और माया की झलक के भूखे हैं । उनके लिये सिर्फ भीतरी अभ्यास एक भारी बोझ है। अपनी पुरानी आदतों को तबदील करके धर्म संबंधी इखलाक (आचार) पर आ जाना बहुत ही बोझिल काम हो गया है, भागने और मुँह छिपाने की कोशिश करते हैं। कितने ही भाग गये और न जाने कौन कौन भागने को तैयार है।

हमारी थोड़ी सी तादाद (संख्या) जो अब तक कायम नजर आती है किस कदर शानदार और वजनी है, इसका मुकाबला दूसरी जमात (संस्था) के सदस्यों से वो ही साहब कर सकते हैं जो अहले नजर (परमार्थ-दृष्टि सम्पन्न) और इस मार्ग के सन्तों की सोहबत उठाये हुए हैं। यही वजह है कि इतनी मुद्दत में भी यह जमात कोई नुमाया और नामवर जमात (प्रसिद्ध संस्था) न बन सकी। न इसका कोई जाहिरा वजूद (अस्तित्व) है न कोई इमारत, न कोई तहरीरी उसूल, लिखित नियम) और न कोई फण्ड है।

यही वजह है कि इब्ददाई उसूल (प्रारम्भिक नियमों) और मन्शा के खिलाफ जहाँ तक भी हो सका अमल दरामद करने की जुर्रत (चेष्टा) नहीं की गई है और अपनी इस जमात यानि संगत को, (बाद में पूज्य लालाजी महाराज द्वारा स्वयं संस्थापित - रामाश्रम सत्संग को) हमेशा माया और मायावी झगड़ों से अलहदा रखा गया है।

(राम संदेश: सितंबर-अक्टूबर 2003)

फ़कीर बुलेशाह से जब किसी ने पूछा कि आप गरीबी में भी भगवान का शुक्रिया कैसे करते हैं तो बुलेशाह ने कहा... चढ़ते सूरज ढ़लदे देखे... बुझदे दीवे बलदे देखे। हीरे दा कोई मूल न जाणे... खोटे सिक्के चलदे देखे। जिना दा ना जग ते कोई, ओ वी पुत्तर पलदे देखे उसदी रहमत दे नाल बंदे पाणी उत्ते चलदे देखे। लोकी कैंदे दाल नइ गलदी, मैं ते पत्थर गलदे देखे। जिन्हा ने कदर ना कीती रब दी, हथ खाली ओ मलदे देखे... कई पैरां तो नंगे फिरदे, सिर ते लभदे छावा, मैनु दाता सब कुछ दित्ता, क्यों न शुकर मनावा।

गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

यम नियम का पालन आवश्यक है

हमारे यहाँ अभ्यासी जब तक यम नियम का पालन नहीं करता तब तक आगे नहीं बढ़ सकता। जो यह चाहते हैं कि हमें नाम (दीक्षा) दिया जाय और सिलसिले (हमारे सत्संग) में शामिल कर लिया जाय तो उनके लिये यह जरूरी है कि पहले अपनी रहनी सहनी ठीक करें। पाँच यम हैं, पाँच नियम हैं:

यम–(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) आस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह।

नियम – (१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर प्रणिधान।

इन यम नियमों का पालन करते हुए बुरी बातों को छोड़ना है। और अच्छाई को ग्रहण करना है। यह जरूरी है कि परमार्थ में शामिल होने के लिये दुनियाँ से कुछ न कुछ वैराग हो। जो अब तक दुनियाँ को चाहते हैं वे तरक्की नहीं कर सकते। जो कर्म कर चुके हो वे तो तकदीर में लिखे जा चुके हैं। वे तो भोगने ही पड़ेंगे। जो कुछ तकदीर में लिखा जा चुका है वह तो होकर ही रहेगा। कोई बेटा चाहता है, कोई अपने रोजगार और नौकरी में तरक्की चाहता है, कोई अपने किरायेदार से परेशान है तो वह यह चाहता है कि किरायेदार मकान खाली कर जाय, किसी की अर्जी अगर कहीं अटकी पड़ी है तो वह चाहता है कि मेरी अर्जी वहाँ से निकल जाय, इत्यादि। क्या यह परमार्थ है? परमार्थ को एक खेल समझ रखा है। यह ठीक है कि अगर किसी का कोई काम ऐसा अटक गया है जिसकी वजह से उसके परमार्थ में रुकावट पैदा हो गई है तो उसकी सहूलियत हो जाये, इसलिये हम सबके लिये दुआ कर देते हैं और चाहते हैं कि वो परमार्थ में तरक्की करे। लेकिन सिर्फ दुनियाँ के लिये ही यह सत्संग नहीं है। जिन्दगी का यह aim (लक्ष्य) नहीं है। दुनियाँ में भी तरक्की के लिये कोशिश करो मगर ईश्वर का सहारा लेकर। अगर कामयाबी नहीं होती है तो निराश नहीं होना चाहिये और यह सोच लेना चाहिये कि ईश्वर ने हमारी इसी में भलाई सोची है।

सन्तमत उसके लिये है जो दुनियाँ से मुक्त होना चाहता है और जो यम नियम का पालन करता है। अपने आपको इस लायक बनाओ तो इस सिलसिले में दाखिल होने के अधिकारी बनोगे।

अब हमारी वृद्धावस्था है और हम में अब इतना पौरुष नहीं रहा कि हम नये सत्संगियों को तालीम दे सकें इसलिये हमने जगह जगह पर तालीम के लिये Centre (केन्द्र) बना दिये हैं। जो लोग नाम लेना चाहते हैं वे पहले अपने नजदीक के Centre (केन्द्र) पर जायें और अभ्यास सीखें। यम नियम का सख्ती से पालन करें। जब उस Centre (केन्द्र) से नाम देने के लिये सिफारिश की जायगी हम नाम देंगे।

(संत वचन - भाग 5 से उद्धृत)

एक सूफ़ी फ़कीर थे, शेख फ़रीद। उनकी प्रार्थना में एक बात हमेशा होती थी, उनके शिष्य उनसे पूछने लगे कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती, हम भी प्रार्थना करते हैं, औरों को भी हमने प्रार्थना करते देखा है, लेकिन यह बात हमें कभी समझ में नहीं आती, आप रोज-रोज यह कहते हो कि हे प्रभु! थोड़ा दुःख मुझे तुम रोज देते रहना! यह भी कोई प्रार्थना है? लोग प्रार्थना करते हैं, सुख दो; और तुम प्रार्थना करते हो, हे प्रभु! थोड़ा दुःख रोज देते रहना। फ़रीद जी ने कहा कि सुख में तो मैं सो जाता हूँ और दुःख मुझे जगाता है। सुख में तो मैं अक्सर परमात्मा को भूल जाता हूँ और दुःख में मुझे उसकी याद आती है। दुःख मुझे करीब लाता है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ, हे प्रभु! इतने कृपालु मत हो जाना कि सुख-ही-सुख दे देना। क्योंकि मुझे अभी अपने पर भरोसा नहीं है। तू सुख-ही-सुख दे दे तो मैं सो ही जाऊँ! जगाने को ही कोई बात नहीं रह जाए। अलार्म ही बंद हो गया। तू अलार्म बजाते रहना, थोड़ा-थोड़ा दुःख देते रहना, ताकि याद उठती रहे, मैं तुझे भूल न पाऊँ, तेरा विस्मरण न हो जाए।

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

मौन साधना का स्वरुप

आदिकाल से जितने भी धर्म हुए हैं, महापुरुषों ने जितनी भी पूजा पद्धतियाँ अपनाने का आदेश दिया है, प्राय: उन सबका अन्तिम चरण मौन है। प्रभु सत्य है। मौन-साधना द्वारा हम उसी सत्यस्वरूप परमात्मा का अंश हमारी आत्मा को अवसर देते हैं कि वह हमारे रोम-रोम में प्रकाशित हो जाये अर्थात हमारी समीपता और संयोग की अनुभूति उस परमात्मा के साथ हो जाये।

प्रगाढ़ निद्रा या सुषुप्ति में हमारा शरीर निष्क्रिय रहता है, मन की चंचलता यानी संकल्प-विकल्प नहीं होते, बुद्धि द्वन्दों से रहित, मुक्त होती है।

मौन साधना करने के लिए सरल और सहज आसन में निश्चल शरीर, शान्त मन और स्थिर बुद्धि से बैठने पर हल्केपन की ऐसी स्थिति आ जाएगी जैसे मानो कोई कपड़ा खूँटी पर टंगा हो - वह कपड़ा अपने बल पर नहीं खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में, परमात्मा की कृपा की वृष्टि का भान होता है। इस वृष्टि से हमारा शरीर, मन और आत्मा सम-रस हो जाते हैं। ईश्वर तो अनन्त आनन्द स्वरुप है, हमारी दशा भी कुछ देर के लिए आनन्द रूप हो जायेगी।

पर सामान्यत: ऐसे आनन्द की अनुभूति होती क्यों नहीं ? इसका कारण मन की चंचलता है। बिना मन की चंचलता को त्यागे ईश्वर का सामीप्य नहीं मिल सकता। होता यह है कि वास्तव में हम अपने मन का संग करते हैं, परमात्मा या गुरु का, सत का, संग नहीं करते। गुरु के संग और प्रभु के संग में कोई अन्तर नहीं है । गुरु भी ईश्वर में लय होकर आपकी सेवा में बैठता है। वह कुछ नहीं करता है - उसका शरीर अपने रोम-रोम के द्वारा परमपिता परमात्मा के प्रेम की किरणें चारों ओर फैलाता है।

गुरु न भी हो तब भी ईश्वर की कृपा सब पर हर समय एक जैसी बरसती रहती है। अन्तर केवल यह है कि गुरु का शरीर साधना करते-करते इतना निर्मल ओर संवेदनशील बन जाता है कि गुरु के शरीर के द्वारा परमात्मा की कृपा की रश्मियाँ

जो आप तक पहुँचती हैं वे कुछ अधिक शक्ति, अधिक तेज और वेग लिए होती हैं। उदाहरण के लिए आतशी शीशे पर यदि सूर्य की किरणें पड़ें तो उसके नीचे रखा काला कपड़ा जल उठता है।

आपके गुरु मौजूद हैं तो ठीक है – अच्छा है। यदि नहीं हैं तो भी आपका सीधा सम्पर्क प्रभु से हो सकता है। बस शर्त यही है कि व्यक्ति मन की चंचलता और बुद्धि की चतुराई से मुक्त हो जाये। इस स्थिति में परमात्मा के साथ समीपता प्रारम्भ हो जाती है। और इस कैफियत को आप बढ़ाते चले जायेंगे तो धीरे-धीरे एक दिन ऐसा आ जायेगा कि आप में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रहेगा। पर यह काम जल्दी का नहीं, धैर्य का है। एक दिन में आत्मिक मौन की स्थिरता नहीं प्राप्त होती – समय लगता है। अभ्यास करते रहें। भले ही कई वर्ष लग जाएँ।

मौन की अवस्था को स्थिर बनाने के लिए नियमित उपासना का त्याग नहीं करना चाहिए। मौन की साधना के लिए पहले मन को कोमल बनाना, संवेदनशील बनाना है ताकि प्रभु की ओर से जो प्रसादी आ रही है उसे साधक ग्रहण करने योग्य हो सके। प्रभु के प्रति भक्ति तो भाव, भावुकता और उपासना से बढ़ेगी। निस्वार्थ सेवा तथा शुभ कार्य एवं सात्विक जीवन भी मौन साधना में सहायक होते हैं।

उपासना के समय शुरू-शुरू में प्रभु की महिमा का गुणगान, स्तुति-वन्दना आदि करना, भजन व पुस्तकें पढ़ना भी सहायक होते हैं। भक्ति किसी भी तरह की, किसी भी भाव की हो, चाहे प्रेमा भक्ति हो, जैसी चैतन्य महाप्रभु करते थे। वे तो भक्ति-भाव में नृत्य गान करते-करते इतने विभोर हो जाते थे कि उनका तन-मन और समस्त चेतना भगवान के तदरूप हो जाती थी, ईश्वरमयी बन जाती थी. भक्ति की चरम सीमा या अन्तिम स्थिति, परिणति आत्मा के 'मौन'की दशा ही है।

मौन में बैठते समय मन चंचलता करेगा, बुद्धि भी तर्क-वितर्क करेगी। इनसे मुक्त होने के लिए या तो प्रेमा-भक्ति का सहारा लें या ज्ञान-साधना का। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो न तो आपका मन स्थिर हो पायेगा और न ही आपको आनन्द की अनुभूति होगी।

मौन साधना के समय कुछ सावधानियाँ भी बरतनी आवश्यक हैं। जब मन में क्रोध हो, किसी के प्रति शत्रुता या बदले की भावना हो, कोई बुरे विचार आ रहे हों

या हीन भाव सता रहे हों तो मौन का अभ्यास न करें क्योंकि ऐसा करने से इन बुराइयों को दृढ़ता मिलेगी। जब तक मन निर्मल न हो जाए, हर प्रकार के विचारों से मुक्त न हो जाये, मौन साधना न करें।

इसी प्रकार मौन साधना करने के पश्चात तुरन्त ही दुनियाँ के कामों में नहीं लगना चाहिए पाँच-दस मिनट एकान्त में रहें। लोग साधना समाप्त होते ही बातों में लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि जो कुछ प्राप्ति हुई होती है, वह समाप्त हो जाती है।

मौन की साधना में बैठने से पूर्व हम 'अधिकारी' बनें। जब तक अधिकार नहीं बनता, भजन पढ़िए, रामायण आदि ग्रंथों का पाठ करिये, संतों की अमृत वाणी पढ़े, सेवा करें और अपनी बुराइयों को छोड़ें। जब योग्य बन जायें तब इस मौन साधना का श्री गणेश करें। इसी मौन साधना के द्वारा आत्मा के दर्शन और परमात्मा से तदरूपता प्राप्त हो पायेगी।

इसी अवस्था की प्राप्ति के लिए ही हमारी प्रार्थना में ''ॐ सहनाववतु '' वाला मन्त्र शामिल किया गया है जिसमें गुरु और शिष्य की साथ-साथ परमात्मा से विनती की गयी है कि - दोनों की साथ-साथ रक्षा व पालन हो, दोनों साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें, तेजोमयी विद्या पायें और अन्ततः अपनी दुई मिटाकर, स्नेह सूत्र में बंध कर, एक हो जायें एवं परम लय अवस्था को प्राप्त करें।

इस मौन-साधना में कोई आशा या इच्छा लेकर नहीं बैठना चाहिए कि हमें प्रकाश की झलक मिले या शब्द सुनाई दे या गुरुदेव के दर्शन हों अथवा सांसारिक सुख मिल जाये, काम में सफलता मिल जाये, आदि ।

हमें तो मानो गंगा के प्रवाह में अपने आपको समर्पित कर देना है। करना-कराना कुछ नहीं। प्रवाह जिधर भी ले जाए उसी के साथ बढ़े चलें। कोई अवरोध नहीं करना है, कोई प्रयास नहीं करना है। इस प्रकार होना है जैसे कि कलाकार पत्थर को एक सुन्दर मूर्ति के रूप में ढाल देता है। साधक को स्वयं को भी इसी प्रकार उस महानतम कलाकार (परमात्मा) के हाथों में छोड़ देना है।

कुछ साधक केवल मौन साधना करते हैं किन्तु वे शिकायत करते हैं कि इसमें रूखापन रहता है, आनन्द नहीं आता। तो आनन्द नहीं आने का कारण पात्रता का न

होना है। मौन साधना की पात्रता हासिल करने के लिए एक सरल युक्ति का अभ्यास करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वह युक्ति यह है कि प्रतिक्रिया करने की आदत का त्याग करें। हम देखते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं, सुनते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं, खाने में रस आता है तो प्रतिक्रिया करते हैं, कुछ सूंघते हैं या कोई वस्तु छूते हैं तो भी भाँति-भाँति की प्रतिक्रियाएं करते रहते हैं। मन में संकल्प-विकल्प उठते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं। जब तक इन प्रतिक्रियाओं का तांता नहीं टूटेगा, तब तक मौन साधना सधेगी कैसे?

इसी प्रकार कम बोलने का अभ्यास करने की भी आवश्यकता है। और कम बोलने में वही व्यक्ति सफल होगा जो प्रतिक्रिया करने की आदत को छोड़ देगा, जिसके लिए विवेक तथा वैराग की साधना भी सहायक होती है। महात्मा गौतम बुद्ध ने साढ़े छः वर्ष साधना की। उसके अंत में उन्होंने यह निर्णय दिया कि भीतर अथवा बाहर में प्रतिक्रिया न हो। यह अच्छा है, वह बुरा है, जब तक ऐसे विचार आते रहेंगे सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि प्रत्येक विचार अपने आप भी एक प्रतिक्रिया है। इसीलिए उन्होंने विचारों से रहित होने का,'शून्य' होने का यह साधन बताया है कि हम प्रतिक्रिया की वृत्ति को छोड़ दें। बात बहुत छोटी सी लगती है परन्तु ऐसा करने में, व्यवहार में, बड़ी कठिनाई होगी। पर निरन्तर अभ्यास करने से यह आदत छूट जाएगी ।

उपनिषद भी यही बताते हैं - 'निर्द्वन्द अवस्था में स्थिर होना है'। आत्मा के मौन का आभास तब ही होता है जब मन और बुद्धि दोनों स्थिर हो जाते हैं आत्मिक मौन को ही वास्तविक मौन कहते हैं।

भक्त रैदास जी ने अपनी सुन्दर पदावली में अधिक बोलने का वर्णन करते हुए अन्त में यही तत्वज्ञान दिया है कि जब साधक 'मगन' अर्थात मौन हो जाता है तभी उसे 'परमनिधि' प्राप्त हो पाती है । उनकी 'अमृत वाणी' में इस 'मगन' होने के भाव का कैसा सुन्दर वर्णन है -

तेरा जन काहे को बोलै ।
बोलि भगत अपने को खोलै। तेरा जन..... ।
बोलत बोलत बढ़े वियाधी, बोल अबोले जाई ।

बोलै बोल अबोल कोप करै, बोल बोल को खाई ।।
बोलै ज्ञान मान परि बोलै, बोलै बोद बड़ाई ।
उर में धरि धरि जब ही बोलै, तब ही मूल गँवाई ।।
बोलि बोलि औरहि समझावै,तब लगि समझ न भाई ।
बोलि–बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई ।।
बोलै गुरु अरु बोलै चेला,समझ बोल की आई ।
कह रैदास मगन भयो जबही, तबहि परम निधि पाई ।।
गुरुदेव सबका कल्याण करें।

(संत प्रसादी – भाग 6 से उद्धृत)

भजन

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।।

टुक नींद से अँखियां खोल जरा, तू अपने रब से ध्यान लगा ।
यह प्रीति करन की रीति नहीं, रब जागत है तू सोवत है।।

जो काल करे सो आज करले, जो आज करे वह अब करले।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है।।

नादान भुगत अपनी करनी, ऐ पापी पाप में चैन कहाँ ।
जब पाप की गठरी शीश धरी, अब शीश पकड़ क्यों रोवत है।।

गुरु ग्रंथ साहिब (पृष्ठ १३५२)

रागु जैजावंती महला ९ ॥

रामु सिमरि रामु सिमरि इहै तेरै काजि है ॥

हे मनुष्य ! राम का भजन कर, राम का भजन-संकीर्तन कर ले, यही तुम्हारा उपयुक्त कार्य है।

माइआ को संगु तिआगु प्रभ जू की सरनि लागु ॥

माया का साथ छोड़कर प्रभु की शरण में आ जाओ।

जगत सुख मानु मिथिआ झूठो सभ साजु है ॥१॥ रहाउ ॥

जगत के सुख एवं मान-सम्मान मिथ्या हैं और सब चीजें झूठी हैं॥ १॥रहाउ॥

सुपने जिउ धनु पछानु काहे परि करत मानु ॥

इस तथ्य को पहचान ले कि यह धन-दौलत सब सपने की तरह है, फिर किस चीज का अभिमान कर रहे हो।

बारू की भीति जैसे बसुधा को राजु है ॥१॥

संसार का राज तो रेत की दीवार की तरह नाशवान् है॥१॥

नानकु जनु कहतु बात बिनसि जैहै तेरो गातु॥

गुरु नानक यही बात कहते हैं कि तेरा शरीर खत्म हो जाना है।

छिनु छिनु करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है॥२॥१॥

ज्यों पल-पल समय गुजर गया है वैसे ही वर्तमान भी गुजर रहा है (राम भजन कर ले)॥२॥१॥

रामु भजु रामु भजु जनमु सिरातु है॥

राम का भजन कर ले (मैं पुनः आग्रह करता हूँ) राम भजन कर ले क्योंकि तेरा जीवन गुजरता जा रहा है।

कहउ कहा बार बार समझत नह किउ गवार॥

मैं बार-बार यही कह रहा हूँ, अरे मूर्ख! तू क्यों नहीं समझ रहा।

बिनसत नह लगै बार ओरे सम गातु है ।।१।।रहाउ।।

इस शरीर को नष्ट होते देरी नहीं लगती, ओले की तरह यह शीघ्र ही पिघल जाता है।।१।।रहाउ।।

सगल भरम डारि देहि गोबिंद को नामु लेहि।।

सब वहमों को छोड़कर भगवान का नाम जप ले।।

अंति बार संगि तेरै इहै एकु जातु ह।।१।।

क्योंकि अन्तिम समय यही तेरे साथ जाता है।।१।।

बिखिआ बिखु जिउ बिसारि प्रभ कौ जसु हीए धारि।।

विषय-विकारों को भुलाकर प्रभु का यश मन में बसा ले।

नानक जन कहि पुकारि अउसरु बिहातु है।।२।।२।।

नानक पुकार.पुकार कर कह रहे हैं कि यह सुनहरी जीवन.अवसर बीतता जा रहा है।।२।।२।।

रे मन कउन गति होइ है तेरी।।

(बुढ़ापा आने पर मौत निकट आ रही है) हे मन! तेरा क्या हाल हो गया है।

इह जग महि राम नामु सो तउ नही सुनिओ कानि।।

(किस तरह मुक्ति होगी) इस जगत् में राम का नाम-संकीर्तन तो तूने सुना नहीं और न ही ध्यान दिया।

बिखिअन सिउ अति लुभानि मति नाहिन फेरी।।१।।रहाउ।।

उम्र भर विषय-विकारों में आसक्त रहे और इनकी ओर से अपनी बुद्धि को बिल्कुल नहीं हटाया।।१।।रहाउ।।

मानस को जनमु लीनु सिमरनु नह निमख कीन।।

मनुष्य का जन्म मिला था परन्तु एक पल भी भगवान का स्मरण नहीं किया।

दारा सुख भइओ दीनु पगहु परी बेरी।।१।।

अपने पुत्र एवं पत्नी के सुखों की खातिर गुलाम बन गए और पैरों में जंजीर पड़ गई।।१।।

नानक जन कहि पुकारि सुपनै जिउ जग पसारु॥

नानक पुकार कर कहते हैं कि जगत का प्रसार सपने की तरह है।।

सिमरत नह किउ मुरारि माइआ जा की चेरी॥२॥३॥

उस ईश्वर का सिमरन क्यों नहीं किया जिसकी माया भी दासी है।।२।।३।।

बीत जैहै बीत जैहै जनमु अकाजु रे॥

हे प्राणी ! यह जिन्दगी व्यर्थ ही गुजर रही है।

निसि दिनु सुनि कै पुरान समझत नह रे अजान॥

हे नासमझ ! दिन.रात पुराणों की कथा सुनकर भी समझ नहीं रहे।

कालु तउ पहूचिओ आनि कहा जैहै भाजि रे॥१॥रहाउ॥

मृत्यु तो तेरे सामने आ गई है, फिर भला इससे बचकर किधर भागोगे।। १।।रहाउ।।

असथिरु जो मानिओ देह सो तउ तेरउ होइ है खेह॥

जिस शरीर को तूने स्थिर मान लिया है, उसने तो मिट्टी हो जाना है।

किउ न हरि को नामु लेहि मूरख निलाज रे॥१॥

हे बेशर्म मूर्ख ! परमात्मा का नाम क्यों नहीं जप रहे।।१।।

राम भगति हीए आनि छाडि दे तै मन को मानु॥

तू राम की भक्ति को अपने हृदय में बसा ले और मन का अभिमान छोड़ दे !

नानक जन इह बखानि जग महि बिराजु रे॥२॥४॥

नानक यही बात कहते हैं कि भक्ति करके संसार में भला जीवन गुजारो।।२।।४।।

श्रीरामचरितमानस - उत्तरकाण्ड (४२ - ४६)

श्री रामजी का उपदेश

चौपाई:

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन।।1।।

एक बार श्री रघुनाथजी के बुलाए हुए गुरु वशिष्ठजी, ब्राह्मण और अन्य सब नगर निवासी सभा में आए। जब गुरु मुनि ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गए तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले श्री रामजी वचन बोले-।।1।।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी।।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।2।।

हे समस्त नगर निवासियों! मेरी बात सुनिए। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीति की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है इसलिए (संकोच और भय छोड़कर ध्यान देकर) मेरी बातों को सुन लो और (फिर) यदि तुम्हें अच्छी लगे तो उसके अनुसार करो!।।2।।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।3।।

वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना।।3।।

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।4।।

बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है (कठिनता से मिलता है)। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया।।4।।

दोहा :

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।।43।।

वह परलोक में दु:ख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है।।43।।

चौपाई :

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं।।1।।

हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है (इस जगत के भोगों की तो बात ही क्या) स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दु:ख देने वाला है। अत: जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं।।1।।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।2।।

जो पारसमणि को खोकर बदले में घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव (अण्डज स्वेदज जरायुज और उद्भिज्ज) चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है।।2।।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।3।।

माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वश में हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करने वाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य का शरीर देते हैं।।3।।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥4॥

यह मनुष्य का शरीर भवसागर (से तारने) के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता से मिलने वाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उसे प्राप्त हो गए हैं।।4।।

दोहा :

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥44॥

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे वह कृतघ्न और मंद बुद्धि है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।।44।।

चौपाई :

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥1॥

यदि परलोक में और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़ता से पकड़ रखो। हे भाई! यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदों ने इसे गाया है।।1।।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥2॥

ज्ञान अगम (दुर्गम) है (और) उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है और उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करने पर कोई उसे पा भी लेता है तो वह भी भक्तिरहित होने से मुझको प्रिय नहीं होता।।2।।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।।3।।

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है परंतु सत्संग (संतों के संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते और पुण्य समूह के बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरण के चक्र) का अंत करती है।।3।।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा।।4।।

जगत में पुण्य एक ही है; उसके समान दूसरा नहीं। वह है- मन कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना। जो कपट का त्याग करके ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं।।4।।

दोहा :

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।45।।

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।।45।।

चौपाई :

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा।
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई।।1।।

कहो तो भक्ति मार्ग में कौन-सा परिश्रम है इसमें न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, न जप, न तप और न उपवास की! (यहाँ इतना ही आवश्यक है कि) सरल स्वभाव हो मन में कुटिलता न हो और जो कुछ मिले उसी में सदा संतोष रखे।।1।।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई।।2।।

मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्यों की आशा करता है तो तुम्हीं कहो उसका क्या विश्वास है? अर्थात् उसकी मुझ पर आस्था बहुत ही निर्बल है। बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ हे भाइयों! मैं तो इसी आचरण के वश में हूँ।।2।।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।।
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी।।3।।

न किसी से वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रखे, न भय ही करे। उसके लिए सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरंभ (फल की इच्छा से कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (जिसकी घर में ममता नहीं है), जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो (भक्ति करने में) निपुण और विज्ञानवान् है।।3।।

चौपाई :

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा।।
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई।।4।।

संतजनों के संसर्ग (सत्संग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय, यहाँ तक कि स्वर्ग और मुक्ति तक (भक्ति के सामने) तृण के समान हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ करता है, पर (दूसरे के मत का खण्डन करने की) मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है ।।4।।

मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह।।46।।

जो मेरे गुण समूहों के और मेरे नाम के परायण है, एवं ममता, मद और मोह से रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो (परमात्मारूप) परमानन्दराशि को प्राप्त है।।46।।

रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद

रजिस्टर्ड ऑफिस: एस ई 297, शास्त्री नगर, हापुड़ रोड, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

उमाकान्त प्रसाद
आचार्य एवं अध्यक्ष

207, संयम प्रतीक अपार्टमेंट
खाजपुरा, पटना-800014

घोषणा: संस्था की कार्यकारणी समिति 2022-2023 में संशोधन एवं संशोधित सूची

मैं, उमाकान्त प्रसाद, पुत्र स्व. श्री चंद्रिका प्रसाद, आचार्य एवं अध्यक्ष रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.) संस्था की वर्तमान कार्यकारणी वर्ष 2022-2023 के लिए संस्था के विधान की धारा 10(ग) में प्रदत अधिकारों के तहत कार्यकारणी समिति में निम्न पदाधिकारियों एवं सदस्यों की नियुक्ति और परिवर्तन की घोषणा करता हूँ तथा नयी संशोधित सूची जारी करता हूँ, जो विधान की धारा के अनुसार वर्ष 2022-2023 की अवधि हेतु वैद्य एवं प्रभावी होगी :-

क्र.	पद	नाम	पता	व्यवसाय
1.	अध्यक्ष	श्री उमाकान्त प्रसाद पुत्र श्री चंद्रिका प्रसाद	207, संयम प्रतीक अपार्टमेंट, खाजपुरा, पटना-800014	सेवानिवृत्त
2.	उपाध्यक्ष	कैप्टन के.सी. खन्ना पुत्र श्री एल.आर. खन्ना	आर-11/182,न्यू राज नगर, गाज़ियाबाद	सेवानिवृत्त
3.	मंत्री	श्री अनुराग चन्द्र प्रसाद पुत्र श्री हरीश चन्द्र प्रसाद	बी1-206, अरावली, सैक्टर 34, नोयडा	सर्विस
4.	कोषाध्यक्ष	श्री राकेश वर्मा पुत्र श्री विनायक प्रसाद वर्मा	ए4-1403 इरोस सम्पूर्णम, सेक्टर-2, ग्रेटर नोएडा वेस्ट गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश	सेवानिवृत्त
5.	संयुक्त-मंत्री	श्री राकेश कुमार पुत्र श्री शारदा नंद लाल	नन्द भवन, गाँधी पथ, गौड़िया मठ जक्कनपुर, पटना	सर्विस

क्र.	पद	नाम	पता	व्यवसाय
6.	सदस्य	श्री प्रियासरन पुत्र श्री गणेश प्रसाद श्रीवास्तव	105 –हिमालय टॉवर, अहिंसा रवण्ड–2, इन्द्रापुरम, गाज़ियाबाद	सेवानिवृत्त
7.	सदस्य	श्री रमेश चंद्र प्रसाद सिन्हा पुत्र श्री देव नंदन प्रसाद	एम ए–39 आदित्यपुर हाउसिंग कॉलोनी, जमशेदपुर, बिहार	सेवानिवृत्त
8.	सदस्य	श्री. आर.पी शिरोमणी पुत्र श्री मूलचन्द वैद्य	मूलचन्द मार्किट, शमशाबाद रोड, आगरा	सेवानिवृत्त
9.	सदस्य	प्रो. राजेश के. सक्सेना पुत्र श्री जंग बहादुर सक्सेना	टी 2, 1501 हारमनी अपार्टमेंट सेक्टर 50, गुरुग्राम	सेवानिवृत्त
10.	सदस्य	श्री अजय बहादुर सिंह पुत्र गोपाल प्रसाद सिंह	प्लाट नम्बर–854, फ्लैट नम्बर–401/402, सुरेन्द्र अपार्टमेंट, मधुसूदननगर भुवनेश्वर, ओड़िशा	शिक्षा संस्थान
11.	सदस्य	श्री आशुतोष झा पुत्र श्री महाकान्त झा	402/सी, श्री गणेश अपार्टमेंट अशोक विहार, रांची	शिक्षा संस्थान
12.	सदस्य	ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव पुत्र श्री उमा कान्त प्रसाद	इ–19, स्ट्रीट F–1, पांडव नगर (मयूर विहार फेज–1 साइड) दिल्ली–110091	लीगल फर्म
13.	सदस्य	श्री रंजीव कुमार (अतुल) पुत्र श्री उदय कुमार सिन्हा	फ्लैट नम्बर–44, जुपिटर अपार्टमेंट, कफ परेड, मुंबइ	सर्विस
14.	सदस्य	श्री संजीव कुमार सिन्हा पुत्र श्री हरे कृष्ण बरियार	हाउस नंबर–16 चेतना समिति, ए जी कलोनी के समीप, पटना	सर्विस

Sd/-
उमाकान्त प्रसाद
अध्यक्ष एवं आचार्य
रामाश्रम सत्संग (रजिस्टर्ड) ग़ाजियाबाद

दिनांक 07–03–2023

योग साधना एवं भोजन

इस युग में मानव समाज सभ्यता की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ है। पूर्वजों ने जिन सुख-सुविधाओं का नाम भी नहीं सुना होगा वे सब हम आज भोग रहे हैं। भौतिक सुख दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं और साथ-साथ खोता जा रहा है हमारा चैन और आराम। सुविधायें सुख दे रही हैं पर आनन्द नहीं। मानव का जीवन तनाव से परिपूर्ण हो गया है तथा परस्पर भाईचारे और प्रेम के स्थान पर समाज में ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य इत्यादि भाव अधिक दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भौतिकवादी संसार में मन प्रधान है। मन शरीर पर प्रभाव डालता है। मन में विषाद होने से शरीर दुर्बल हो जाता है। ऐसे ही शरीर का प्रभाव मन पर होता है। स्वस्थ तथा सबल शरीर हो तो मन भी स्वस्थ रहता है, यदि शरीर रुग्ण हो मन भी रुग्ण होता है। व्यक्ति जितना सुख समझ कर भौतिकता की इच्छा करता है उसका शरीर और मन उसी अनुपात में खिन्न होकर उद्विग्नता से भर जाते हैं। मन मानव को पदार्थों द्वारा लुभाता और धोखा देता रहता है।

इस संसार सागर में भ्रमित हुई मनुष्य रूपी नौका को मन और उसकी इन्द्रियों ने वासनाओं की अति शक्तिशाली जंजीरों से बांध रखा है। मन का वास्तविक स्वरूप वासनाएं हैं। मन और वासना एक ही हैं। वासनाओं के दो प्रबल सहकर्म सुख और सौन्दर्य दोनों हमारे मन में रहते हैं। ये दोनों सदैव क्षणभंगुर, अनित्य तथ अल्पकालिक होते हैं। मन कल्पनायें करता है, लुभाता है, मोहित करता है, मिथ्या चिन्ताओं और पूर्वाभासों के द्वारा अनावश्यक रूप से भयभीत करता है। दुर्बल इच्छा शक्ति के कारण दुर्वासनाओं, तृष्णाओं तथा मन के प्रलोभनों को रोकना कठिन है। मन का यह खेल शरीर को लगातार रुग्ण करता रहता है। कठोपनिषद् में मन को घोड़ों की लगाम और बुद्धि को सारथी बताया गया है। मन और बुद्धि दोनों मिलकर चित्त बनते हैं। मन और बुद्धि को वश में रखने का नाम योग है। वासनाओं से युक्त मन बन्धन में ले जाता है। जब वासना अपना कार्य प्रारम्भ करती है तब हमारी इन्द्रियां गतिशील हो जाती हैं। वासना की पूर्ति हो जाने पर इन्द्रियों की तृप्ति हो जाती है। ''ये हि संर्स्पशज भोग दुःखयोनय एव ते'' - जो भोज इन्द्रियों और पदार्थों के समागम से प्राप्त होता है वह निश्चय ही दुख भरा होता

है। गीता में मन को छठी इन्द्रिय कहा है–''मन षष्ठानीन्द्रियाणि''। मन इन्द्रियों का समूह है। सब इंद्रियाँ मन के साथ मिल कर दृश्य बनाती हैं या कल्पनाएं करती हैं। आंख केवल देख सकती है, कान केवल सुन सकते हैं, जिह्वा केवल स्वाद ले सकती है, त्वचा केवल स्पर्श कर सकती है और नाक केवल सूंघ सकती है परन्तु मन ये सब कार्य अकेला भी कर सकता है। मन देख सकता है, सुन सकता है, स्वाद ले सकता है, स्पर्श कर सकता है और सूंघ भी सकता है। और पांचों इन्द्रिया वहां मिली हुई हैं। सब इन्द्रियों की मूल भूमि अर्थात् आयतन मन है। यदि मन का सम्बन्ध इन्द्रियों से न हो तो वे कुछ भी नहीं कर सकती हैं।

नाक और आंख हमारी जिह्वा की प्रिय सहकारी हैं। जिह्वा की सहोदरा इन्द्रियां जननेन्द्रिय हैं। ये दोनों इस शरीर में सबसे चंचल और दुखदायी हैं। ये दोनों रसनेन्द्रियां हैं जिह्वा इसका सात्विक अंश है तथा जननेन्द्रिय राजसिक अंश है। ये जल–तत्व गुणों से उत्पन्न हुए हैं। ये दोनों रस पैदा करती हैं जो भ्रान्तिजनक पदार्थ है। इन इन्द्रियों का मन की झूठी कल्पनाएं और मृगतृष्णाएं बनाने में सबसे अधिक योगदान है। जिह्वा का संयम सबसे अधिक कठिन है। काम–वासना किशोर होने पर प्रकट होती है। यौन–सुख का सेवन भी आयु और स्वास्थ्य से जुड़ा है। इस सुख को भोगने का काल थोड़ा है परन्तु भोजन तो जराजीर्णावस्था में भी करना पड़ता है। हम जन्म से ही सुस्वादु पदार्थ खा रहे हैं। भोजन का एक बार चखा हुआ स्वाद मन के आयतन में सदा के लिये लिख लिया जाता है। भोजन का रूप देखते ही मन में गुदगुदी होने लगती है। भोजन की गन्ध जिह्वा की ग्रसनी पर चेतना उद्वित कर देती है। आम का पीला–पीला रूप मन में हलचल पैदा करता है। भोजन की सौंधी महक मुंह को लार से भर देती है।

इन्द्रियों और मन की उपरति से आनन्द प्राप्त होता है। जब मन में उद्वेग हो तो शरीर भी उद्विग्न हो जाता है। इससे हमारे प्राण की गति गलत दिशा में हो जाती है। उस समय प्राण सारे शरीर में निरन्तर तथा समान चलने की जगह विषम गति से चलता है। तब भोजन भी ठीक से नहीं पचता जिससे रोग पैदा हो जाते हैं। अत: भोजन की लालसा को वश में करके ही हम जिहवा वश में कर पायेंगे जो सब क्लेशों और रोगों का मूल है। जिहवा संयम का अर्थ मन का संयम है। जब आप मन को जीत लेते है तब शरीर आपका दास हो जाता है। मन जितना शांत होता है प्राण उतना ही शक्तिशाली होगा। साधक अपने शरीर में प्राणवायु

का आधिक्य कर के अपनी भोजन आवश्यकताओं को कम कर लेता है। इससे शरीर के रसायन बदलते हैं और चैतन्य सक्रियता बढ़ जाती है।

भोजन का मन के साथ सीधा तथा घनिष्ठ सम्बन्ध है। भोजन अपने स्वाद से मन और शरीर को अपनी ओर खींचता है। हर व्यक्ति अपनो प्रकृति के मानसिकता के अनुसार अपना भोजन चुनता है। धीरे-धीरे यहाँ भोजन उसकी आदत बन जाता है और पहचान भी जैसे कि शराबी, सुल्फी, मांसाहारी, शाकाहारी आदि । तामसिक और राजसिक भोजन मन में उत्तेजना पैदा करते हैं। यह भोजन गरिष्ठ होता है, तथा इनको पाने की आदत बड़ी प्रबल बन जाती है। इनके खाने से अपच होती है, उत्तेजना और वासना उभरती है, क्रोध की भावना उग्र होती है। जिह्वा के उपद्रव के आगे अपनी आदत से बेबस इस तरह का भोजन खाने वाले रोग-ग्रस्त हो जाते हैं। ये लोग भोजन को जीवन में आवश्यकता से अधिक महत्व की चीज बना लेते हैं।

सात्विक आहार साधक को बलवान मन, स्वस्थ शरीर और ओजस्वी प्राणशक्ति प्रदान करता है। इसके सेवन से उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन बना रहता है। गीता के अनुसार :

आयुः सत्त्ववलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हुद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ (17/8)

जिन आहारों के करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है, सात्विक बल एवं उत्साह पैदा होता है, शरीर में निरोगता बढ़ती है, जिनको देखने से ही सुख मिलता है प्रीति पैदा होती है, वे अच्छे लगते हैं। जो आहार सुपाच्य हैं हृदय और फेफड़ों आदि को शक्ति देने वाले हैं वह चिकने और स्नेहयुक्त भोजन पदार्थ सात्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्ष विदाहिनः ।
आहार राजसस्येष्टा दुःखरोकामयप्रदाः॥ (17/9)

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, रूखे और दाहकारक भोज्य पदार्थ राजस मनुष्य को प्रिय होते हैं। भोज्य पदार्थ परिणाम में दुख, शोक और रोगों को देने वाले होते हैं। भोजन करने के बाद मन में कोई प्रसन्नता नहीं होती अपितु स्वाभाविक चिन्ता रहती है। ऐसे भोजन खाने से प्रायः रोग होते हैं।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (17/10)

अधपके या ज्यादा पके भोज्य पदार्थ जिनका रस सूख गया है, दुर्गन्ध वाले सड़े आदि व बासी पदार्थ तामसी प्रवृत्ति के मनुष्यों को प्रिय होते हैं, भोजन के प्राकृतिक स्वाद या सरसता को बिगाड़ना साधक के लिए सर्वथा वांछनीय नहीं है। गीता में लिखा है – 'नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति'– योग उसके लिये नहीं है जो बहुत अधिक भोजन करता है। भूख से अधिक खाने वाले का योग सिद्ध नहीं होता है। उसका शरीर बोझिल हो जाता है और उसे आलस्य छा जाता है। और ऐसे ही बिल्कुल न खाने वाले का भी योग सिद्ध नहीं होता है। 'न चौकान्तमनश्नतः' कम खाने से शरीर में शक्ति कम हो जाती है। बैठ कर अभ्यास करना भी कठिन हो जाता है। भोजन न करने से ध्यान बार–बार भोजन की ओर जाता है और चित्त परमात्मा में नहीं लगता है।

शरीर की अवहेलना करना और उसे नष्ट होने देना भूल है। शरीर ही साधना का आधार है और उसे अच्छी अवस्था में रहना चाहिये। ''शरीर माद्यं खलु धर्म आदि साधनम'' – शरीर की साधना प्रथम धर्म है। भोजन करने के लिये आवश्यक नहीं है कि भोजन की वासना या लालसा हो। साधक वासना से प्रेरित होकर भोजन नहीं करता बल्कि शरीर को बनाये रखने के लिये करता है। अतः भोजन उतना ही किया जाये जो सुगमता से पच जाये। भोजन शरीर के अनुकूल हो तथा वह हल्का और थोड़ी मात्रा में हो यानि भूख से थोड़ा काम खावे। ऐसा भोजन करने वाला ही युक्ताहार करने वाला है। भोजन शरीर की आवश्यकता ही नहीं अपितु अनिवार्यता है। शरीर अपना रख रखाव, ऊर्जा–ऊष्मा, टूट–फूट की पूर्ति तथा अन्य अनेकों आवश्यकताएं भोजन से ही पूरी कर पाता है। लेकिन लोलुपता के वश या शरीर की आवश्यकता के विरुद्ध खाया गया भोजन केवल रोग पैदा करता है। जिहवा का संयम ही योग–प्रत्याहार की पहली सीढ़ी है। छान्दोग्यपनिषद के अनुसार :

आहारशुद्धी सत्यशुद्धिः। सत्यशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥
स्मृति लाभे सर्वग्रन्थिनां विप्रमोक्षः॥

आहार शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण की शुद्धि होने पर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृति की प्राप्ति होने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों की निवृत्ति हो जाती है।

रोगग्रस्त शरीर से कोई भी काम पूरा नहीं हो सकता बल्कि संसार नीरस लगता है। स्वास्थ्य ऐसी वस्तु भी नहीं जो खरीदी जा सके। इदं शरीरम् कौन क्षेत्र मित्येभिधीयते ।। अर्थात् यह शरीर खेत के समान है। मेहनत करके इसमें इष्ट फल उपजाया जा सकता है और यदि लापरवाही करेंगे तो केवल खरपतवार उग जायेंगे। ''समत्वं योग उच्चयते''... योग का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। चिकित्सा की अन्य कोई भी पद्धति निरोग नहीं रख सकती। महात्मा गांधी के कथनानुसार ''वह औषधि अच्छी नहीं माननी चाहिये जो थोड़े दिन के लिये अच्छा कर दे बल्कि दुबारा बीमारी न होने दे ऐसी औषधि अपनानी चाहिए।''

अत: मनुष्य द्वारा तैयार की गई शरीर को ठीक रखने की जितनी भी सामग्री एवं साधन हैं, उन पर निर्भर कर अपने को भ्रम में रखना है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में ''आज देश को लोहे की मांशपेशियों और फौलाद के स्नायु प्रचण्ड वाली इच्छा शक्ति चाहिए जिसे योग के माध्यम से तुम्हें जागृत करना है।'' ऋषियों ने योगासनादि की रचना शरीर चित्तशुद्धि की प्राप्ति के लिये ही की है। योग साधना के लिये हमें यौगिक क्रियाओं के द्वारा ही निरोगता प्राप्त हो सकती है। मनोवैज्ञानिक खोजों के अनुसार भोजन पाने की लालसा प्राणियों में सबसे अधिक है क्योंकि हमारे शरीर की आवश्यकता भी है। और हमारी इन्द्रियों की लालसा भी। मानव के लिये आवश्यकता तथा लालसा का अन्तर समझना उसके अपने निजी विवेक पर अधिक निर्भर करता है। यह अत्यन्त कठिन कार्य है तथा तनिक सी चूक से शरीर में व्याधियां तथा असंतुलन आ जाते हैं। योग साधक को इसे संतुलित करना है। रोग मुक्ति में भोजन की अहम् भूमिका है इसकी व्याख्या अगले अध्याय में है।

(भारतीय योग संस्थान की पुस्तक ''योग करे निरोग'' से उद्धृत)

श्री रमन महर्षि

भक्ति का अर्थ

उसकी (ईश्वर या गुरु) शरण ग्रहण करो और उसकी इच्छा के अधीन रहो, चाहे वह प्रकट हो, चाहे तिरोहित हो, प्रसन्ता से उसकी इच्छा की प्रतीक्षा करो। यदि तुम उससे अपनी इच्छा पूरी करने को कहते हो तो वह शरणागति नहीं, आदेश है। वह जानता है कि तुम्हारे लिए क्या सब से अच्छा है, और वह कब और कैसे किया जायेगा। सब कुछ पूरी तरह से उस पर छोड़ दो। भक्ति का अर्थ है कि सारा भार अब उसका है । तुम्हें अब कोई चिंता नहीं करनी है । तुम्हारी सब चिंतायें अब उसकी है।

The Collected Works of Sh. Sri Ramana Maharshi

1. Who am I?

The gross body which is composed of the seven humours (dhatus), I am not; the five cognitive sense organs, viz., the senses of hearing, touch, sight, taste, and smell, which apprehend their respective objects, viz., sound, touch, colour, taste, and odour, I am not; the five congative sense organs, viz., the organs of speech, locomotion, grasping, excretion and procreation, which have as their respective functions, speaking, moving, grasping, excreting and enjoying, I am not; the five vital airs, prana, etc., which perform respectively the five functions of inbreathing, etc., I am not; even the mind which thinks, I am not; the nescience too, which is endowed only with the residual impressions of objects, and in which there are no objects and no functionings, I am not.

2. If I am none of these, then Who am I?

After negating all of the above mentioned as ‘not this’, ‘not this’, that Awareness which alone remains — that I am.

A Famous Teaching of Torah

(Hebrew Bible or the five books of Moses including Talmud)

The Talmud is oral Torah i.e the Jewish oral traditions which were later compiled in written form. One famous account in the Talmud (Shabbat 31a) tells about a gentile who wanted to convert to Judaism.

A certain heathen came to Hillel (a great Talmudic sage) and said to him "Make me a proselyte, on condition that you teach me the whole Torah in the time I can stand on one foot. Hillel said to him

"What is hateful to you, do not do to your neighbour: that is the whole Torah; all the rest is commentary."

This means what is hateful to you, do not do that to any other person. That is essence of all scriptures and basis of human conduct, the rest is the explanation of this.

Tales and Parables of Sri Ramakrishna

SELF-HELP AND SELF-SURRENDER

A father was once passing through a field with his two little sons. He was carrying one of them in his arms while the other was walking along with him holding his hand. They saw a kite flying and the latter boy giving up his hold on his father's hand, began to clap his hands with joy, crying, "Behold, papa, there is a kite!" But immediately he stumbled down and got hurt. The boy who was carried by the father also clapped the hands with joy, but did not fall, as his father was holding him. The first boy represents self-help in spiritual matters, and the second self-surrender.

NOT UNTIL THE ILLUSION BREAKS

A GURU said to his disciple: "The world is illusory. Come away with me." "But revered sir," said the disciple, "my people at home—my father, my mother, my wife—love me so much. How can I give them up?" The

guru said: "No doubt you now have this feeling of "I" and 'mine' and say that they love you; but this is all an illusion of your mind, I shall teach you a trick, and you will know whether they love you truly or not." Saying this, the teacher gave the disciple a pill and said to him: "Swallow this at home. You will appear to be a corpse, but you will not lose consciousness. You will see everything and hear everything. Then I shall come to your house and gradually you will regain your normal state." The disciple followed the teacher's instructions and lay on his bed like a dead person. The house was filled with loud wailing. His mother, his wife, and the others lay on the ground weeping bitterly. Just then a brahmana entered the house and said to them, "What is the matter with you?" "This boy is dead", they replied. The brahmana felt the pulse and said: "How is that? No, he is not dead. I have a medicine that will cure him completely." The joy of the relatives was unbounded; it seemed to them that heaven itself had come down into their house. "But", said the brahmana, "I must tell you something else. Another person must take some of this medicine first, and then the boy must swallow the rest. But the other person will die. I see he has so many dear relatives here; one of them will certainly agree to take the medicine. I see his wife and mother crying bitterly. Surely they will not hesitate to take it." At once the weeping stopped and all sat quiet. The mother said: "Well, this is a big family: Suppose I die; then who will look after the family?" She fell into a reflective mood. The wife, who had been crying a minute before and bemoaning her ill luck, said: "Well he has gone the way of mortals. I have these two or three young children. Who will look after them if I die?" The disciple saw everything and heard everything. He stood up at once and said to the teacher: "Let us go, revered sir. I will follow you."

HAVE BOTH YOUR HANDS FREE

ONCE, a woman went to see her weaver friend. The weaver, who had been spinning different kinds of silk thread, was very happy to see her friend and said to her: "Friend, I can't tell you how happy I am to see you. Let me get you some refreshments." She left the room. The woman looked at the threads of different colours and was tempted. She hid a bundle of thread under one arm. The weaver returned presently with the refreshments, and began to feed her guest with great enthusiasm. But,

looking at the thread, she realised that her friend, had taken a bundle. Hitting upon a plan to get it back she said, "Friend, it is so long since I have seen you. This is a day of great joy for me. I feel very much like asking you to dance with me." The friend said, "Sister, I am feeling very happy too." So the two friends began to dance together. When the weaver saw that her friend danced without raising her hands, she said, "Friend let us dance with both hands raised. This is a day of great joy." But the guest pressed one arm to her side and danced raising only the other. The weaver said "How is this, friend? Why should you dance with only one hand raised? Dance with me raising both hands. Look at me. See how I dance with both hands raised." But the guest still pressed one arm to her side. She danced with the other hand raised and said with a smile, 'This is all I know of dancing!'

Don't press your arm to your side. Have both your hands free. Be not afraid of anything. Accept both the Nitya and the Lila, both the Absolute and the Relative.

The Mastery of Diet

(Acharya Vinobha Bhave)

I have always been engaged in some experiment or other in matters of diet. This is bound to happen with people who are curious about spiritual growth, since the body is an image of the soul and should be treated as such. Just as the Sun is an embodiment of light, so the physical body is a manifestation of the divine spirit. When one looks at the image, one should think of the god he represents.

When I was a child I was very careless about food. I had no regular meal-times; when I felt hungry I would ask my mother for something, and eat whatever she gave me. As a boy I roamed about till late at night and then had a very late supper. That was how it was until I came to Bapu. In his Ashram meal-times were fixed and regular, and I began to realize the benefits of regular meals. I felt ready to eat when the time came, and I found that this regularity was good for both body and mind.

Although I was so careless about food as a boy, I did not like karela (bitter gourd) and I never ate it. Mother used to say: 'Vinya, you talk

a lot about control of the palate, but you won't eat karela !' I used to answer that control did not mean overcoming all my dislikes. But after I entered Bapu's Ashram I resolved from the first that I would overcome my dislikes. In those days Bapu himself used to serve at meals. One day the vegetable was karela. When Bapu himself was serving, how could I refuse it? So I took it, and as I did not like it, I ate it first to get rid of it. Bapu noticed that I had no vegetable left, and served me some more. I still said nothing, and ate that too. Bapu then thought that I must be fond of it, and gave me a third helping ! It was clear that I should have to give up my dislike of karela.

As a child born in Konkan I was very fond of curd-rice, which we used to get every day. When I came to Bapu I found that people were expected to give up alcoholic drinks, and other things to which they were addicted. It seemed to me that we had no right to ask other people to give up these habits unless we first gave up something ourselves. So I gave up my curd-rice, because that was what I liked best.

I gave up taking sugar in 1908 when I was thirteen or fourteen years old. I resolved not to eat foreign sugar until India got her Independence, and I made it a vow. But a little later I began to suspect that the sugar served to me as Indian sugar was not always really so, as was claimed. So I gave up sugar altogether and did not eat it again until independence came in 1947.

A similar thing happened about salt. That too is an old story, going back to 1917-18 when I was touring Maharashtra on foot. Ten or twelve of us went to visit Torangarh fort. We had expected to be able to buy food-stuffs there, but nothing except rice could had. We cooked it, and were ready to eat. 'At least let us have salt,' we thought, but even salt was not available, and we had to eat the rice without it, so we did not really satisfy our hunger. This brought to mind the rishis and munis who used to try giving up one or other of the usual ingredients of food so as to be able to do without them. We too, I thought, should be able to bridle our palate; we should not allow it to run away with us like a bolting horse ! I realized that giving up salt was a valuable discipline and I resolved to take it only once a day. After some time I found that it was not difficult to do without it altogether, and I gave it up permanently.

In these experiments with diet, I always keep four aspects in mind: first, the spiritual benefit; second, bodily health; third, the principle of

swadeshi-is the food available locally?; fourth, the economic aspect, the cost. A thing might rank high in one way and low in another; if there has to be a choice between these four aspects I should choose in the order I have given above. But I do not like any division. When they are all integrated we have a true and complete spiritual perspective and at the same time a true and complete swadeshi perspective and a true and complete economic perspective.

It is my experience that someone who lives under the open sky needs fewer calories in food. During my Bhoodan pilgrimage my diet contained only 1200 or 1300 calories; the doctors were astonished that I could do so much on so few calories. I used to tell them that I lived chiefly on the open sky; that is my number one article of food. Number two is fresh air, number three is sunshine. Number four is water, plenty of water, a little at a time but frequently. Water gives one great vitality. Solid food comes last, it is the least important. The most important is to live under the open sky.

The first thing is to be content with the food; contentment is the key to health. My plan is twofold: first, let the food be tasty; second, let it be eaten with no thought of its taste. Everybody would approve of the first half of that, but not of the second. But I also notice that some people who like the second do not approve of the first ! Real contentment comes from keeping both the parts together.

[Excerpts: Moved By Love (The Memoirs of Vinoba Bhave)]

Sri Aurobindo's Thoughts and Glimpses

"The whole world yearns after freedom, yet each creature is in love with his chains; this is the first paradox and inextricable knot of our nature.

"Man is in love with the bonds of birth; therefore he is caught in the companion bonds of death. In these chains he aspires after freedom of his being and mastery of his self-fulfilment.

"Man is in love with power; therefore he is subjected to weakness. For the world is a sea of waves of force that meet and continually fling themselves on each other; he who would ride on the crest of one wave, must faint under the shock of hundreds.

"Man is in love with pleasure; therefore he must undergo the yoke of grief and pain. For unmixed delight is only for the free and passionless soul; but that which pursues after pleasure in man is a suffering and straining energy.

"Man hungers after calm, but he thirsts also for the experiences of a restless mind and a troubled heart. Enjoyment is to his mind a fever, calm an inertia and a monotony.

"Man is in love with the limitations of his physical being, yet he would have also the freedom of his infinite mind and his immortal soul.

"And in these contrasts something in him finds a curious attraction; they constitute for his mental being the artistry of life. It is not only the nectar but the poison also that attracts his taste and his curiosity."

●●●

"Death is the question Nature puts continually to Life and her reminder to it that it has not yet found itself. If there were no siege of death, the creature would be bound forever in the form of an imperfect living. Pursued by death he awakes to the idea of perfect life and seeks out its means and its possibility."

●●●

"Pain and grief are Nature's reminder to the soul that the pleasure it enjoys is only a feeble hint of the real delight of existence. In each pain and torture of our being is the secret of a flame of rapture compared with which our greatest pleasures are only as dim flickerings. It is this secret which forms the attraction for the soul of the great ordeals, sufferings and fierce experiences of life which the nervous mind in us shuns and abhors."

●●●

(Extracts from "Sri Aurobindo Birth Centenary Library Vol. 16")

ईश्वर प्राप्ति का यकीनी जरिया

1. जिक्र खफ़ी का जाप (दिल का जाप) किया करें।
2. नाजिन्स, गैर-आदमी और गैर-सोहबत के नक्शों से दिल को साफ रखें।
3. परमात्मा के सिवाय किसी की तरफ तवज्ज़ो न करें।
4. यकसुई और एकाग्रता के साथ दिल हाजिर रखने का इरादा करें।
5. सत और मालिक की तरफ उनसियत और लगाव हासिल करें।
6. अपने आप को मिटाकर उसी में महव और लय हो जाएं।
7. इसी काम में अपने को मिला दें। सबसे ज्यादा नजदीक रास्ता और असल पद पर पहुँचने का यकीनी जरिया है।

-(महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

Easiest & Most Certain Short-cut to Attain Eternal Bliss

1. Engage yourself in the practice of listening to every heartbeat, super imposing there with the nomenclature of the Lord (AJAPA JAP).
2. Keep your heart pure, away from the corrupting influence of undesirable things and undesirable company.
3. Always keep attuned to the Lord. Your attention should never for a moment be deviating there from.
4. Concentrate your attention on the heart and keep your heart centred in the Lord.
5. Endeavour to attain kinship and attachment to the Eternal truth, the Lord of the Universe.
6. Gradually erase the identity of self, try to merge in and attain oneness with God.
7. Sacrifice life in this grand endeavour.

(Mahatma Ramchandra Ji Maharaj)

Note: The English translation is done by Dr H.N. Saksena

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम संदेश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। चन्दा 20 रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, एस ई 297-शास्त्री नगर, ग़ाज़ियाबाद-201002 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम संदेश डाक द्वारा नहीं भेजा जायेगा। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जायेगा। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

एस ई 297-शास्त्री नगर,
ग़ाज़ियाबाद-201002

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : श्री उमा कान्त प्रसाद

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301